इकाई 5 जाति*

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 जाति व्यवस्था की विशेषताएँ

- 5.2.1 समाज का विभाजन
- 5.2.2 अनुक्रम
- 5.2.3 भोजन और सामाजिक संसर्ग पर प्रतिबंध
- 5.2.4 विभिन्न वर्गों के नागरिक और धार्मिक अपात्रता और विशेषाधिकार
- 5.2.5 विवाह पर प्रतिबंध
- 5.2.6 व्यवसाय की अप्रतिबंधित विकल्प का अभाव

5.3 जाति को समझने के सैद्धांतिक दृष्टिकोण

- 5.3.1 जाति और वर्ग
- 5.3.2 जजमानी प्रणाली

5.4 जाति व्यवस्था के भीतर परिवर्तन और निरंतरता

- 5.4.1 जाति और राजनीति
- 5.4.2 जातिगत भेदभाव को रोकने के उपाय

5.5 सारांश

5.6 संदर्भ

5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप सक्षम होंगे –

- जाति को परिभाषित करने और इसकी विशेषताओं का वर्णन करने में
- जाति की समझ के सैद्धांतिक दृष्टिकोण पर चर्चा करने
- जजमानी प्रणाली और जाति व्यवस्था के साथ इसके संबंध का वर्णन करने
- जाति व्यवस्था में प्रमुख परिवर्तनों और निरंतरता के तत्वों पर चर्चा करने
- भारतीय राजनीतिक प्रणाली और अंत में जाति व्यवस्था के प्रभाव की व्याख्या और
- जातिगत भेदभाव को कम करने के लिए किए गए उपायों पर चर्चा कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

जाति सामाजिक स्तरीकरण की एक प्रणाली है। यह भारतीय सामाजिक संरचना के मूल में है। इसमें जन्म के अनुसार रैंकिंग शामिल है और एक व्यक्ति के व्यवसाय, विवाह और सामाजिक संबंधों को निर्धारित करता है। मानदंडों, मूल्यों और प्रतिबंधों का एक निर्धारित समूह है जो जाति के भीतर सामाजिक व्यवहार को नियंत्रित करता है।

*डॉ. शैली भाषांजलि/अनु. डॉ. शास्वत कुमार

समाजशास्त्रियों ने जाति को , वंशानुगत, अंतोगामी समूह के रूप में, जो आमतौर पर स्थानीयकृत है में परिभाषित किया है। जिसका एक पारंपरिक व्यवसाय है और जो जातियों के स्थानीय पदानुक्रम में एक पेशा और एक विशेष स्थान रखता है। जातियों के बीच संबंध अन्य बातों के अलावा, शुद्धता एवं अशुद्धता की अवधारणा और जाति के भीतर होने वाली सामान्य अधिकतम समानता के आधार पर संचालित होते हैं "(श्रीनिवास 1962)। यह जाति व्यवस्था के आदर्श रूप की परिभाषा है। वास्तव में, हालांकि, जाति व्यवस्था की संरचना और कार्यप्रणाली में भिन्नताएं हैं ।

जाति व्यवस्था के सैद्धांतिक निरूपण और इसकी अस्तित्वगत वास्तविकता के बीच अंतर करना अनिवार्य है। सैद्धांतिक रूप से, भारतीय समाज के जातिगत स्तरीकरण का मूल वर्ण व्यवस्था में है। इस प्रणाली का शाब्दिक अर्थ है रंग जो वैदिक काल के दौरान प्रचलित था। रंग के इस सिद्धांत के अनुसार, हिंदू समाज चार मुख्य वर्णों में विभाजित था ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ।

वर्ण की अवधारणा का आम तौर पर ऋग्वेद वेद के पुरुष सूक्त से पता चलता है। इसमें कहा गया है कि वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति यज्ञ द्वारा आदि जीव या पुरुष से हुई है। यज्ञ के बाद, मुख से ब्राह्मण, बाहों से क्षत्रिय, जांघों से वैश्य और पैरों से शूद्र प्रकट हुए । इस प्रकार, जिन चार वर्णों का उदय हुआ, उन्हें दैवीय उत्पत्ति माना गया।

5.2 जाति व्यवस्था की विशेषताएँ

प्रसिद्ध समाजशास्त्री घुर्ये (1962), ने जाति व्यवस्था की छह विशेषताओं की पहचान की। ये छह विशेषताएं हैं :

5.2.2 समाज का खंडीय विभाजन

हिंदू समाज विभिन्न जातियों में विभाजित है। जाति की सदस्यता का निर्धारण जन्म से होता है न कि चयन और उपलब्धियों से। इसलिए, जाति की स्थिति को जन्म (जन्म के अनुसार) माना जाता है।

5.2.3 पदानुक्रम

जाति व्यवस्था में सामाजिक प्राथमिकता की एक विशिष्ट योजना है जिसमें उन्हें एक सामाजिक और अनुष्ठान पदानुक्रम में व्यवस्थित किया जाता है। उच्च और निम्न, श्रेष्ठता और हीनता की भावना इस उन्नयन या रैंकिंग के साथ जुड़ी हुई है। ब्राह्मणों को पदानुक्रम के शीर्ष पर रखा जाता है और उन्हें अनुष्ठानिक रूप से शुद्ध या सर्वोच्च माना जाता है। सबसे अशुद्ध माने जाने वाले अछूत, पदानुक्रम के सबसे निचले पायदान पर होते हैं। बीच में क्षत्रिय हैं, उसके बाद वैश्य हैं। इस प्रकार, जाति पदानुक्रम के समग्र ढांचे में एक विशिष्ट स्थिति पर कब्जा करती है।

5.2.3 भोजन और सामाजिक संपर्क पर प्रतिबंध

ऐसे नियम निर्धारित किए गए हैं जो भोजन के आदान-प्रदान को नियंत्रित करते हैं जिसे विभिन्न जातियों के बीच खान -पान और सामाजिक संपर्क भी कहा जाता है। जातियों के बीच एक तरह के भोजन को एक साथ खाने , प्राप्त या आदान-प्रदान करने पर प्रतिबंध है। एक ब्राह्मण किसी भी समुदाय से 'पक्का' भोजन, जैसे घी ष्में तैयार किया हुआ भोजन स्वीकार करेगा, लेकिन वह अन्य जाति के हाथों पानी में तैयार किए गए भोजन को स्वीकार नहीं कर सकता। प्रदूषण की अवधारणा सामाजिक संपर्क की सीमा पर गंभीर प्रतिबंध लगाती है।

5.2.4 विभिन्न वर्गों के नागरिक और धार्मिक निर्योग्यताएँ और विशेषाधिकार

प्रत्येक जाति, अनुष्ठान के रूप में अन्य की तुलना में अधिक शुद्ध या अशुद्ध मानी जाती है। शुद्धता और अशुद्धता की विचारधारा विभिन्न जातियों के बीच संबंधों को महत्वपूर्ण रूप से नियंत्रित करती है। श्रेष्ठ जातियों द्वारा अपनी औपचारिक शुद्धता को बनाए रखने के लिए कई वर्जनाएँ प्रचलित हैं।

अनुष्ठान को अशुद्ध माना जाने वाली जातियों को कई गुना विकलांग बना दिया गया। उदाहरण के लिए, उन्हें सार्वजनिक सड़कों, सार्वजनिक कुओं का उपयोग करने या हिंदू मंदिरों में प्रवेश करने से मना किया गया था। कुछ जातियों की छाया को प्रदूषणकारी माना जाता था, जैसे कि तमिलनाडु में शार्न्स या ताड़ी निकालने वाली जाति को पहले के समय में ब्राह्मण से अपनी दूरी को 24 कदम तक सीमित करना पड़ता था। प्रत्येक जाति के अपने रीति-रिवाज, परंपराएं, प्रथाएं और रिवाज हैं। इसके अपने अनौपचारिक नियम, नियम और प्रक्रियाएं हैं।

5.2.5 विवाह पर प्रतिबंध

अंतर्विवाह (एंडोगैमी) या किसी एक जाति या उपजाति के भीतर विवाह जाति व्यवस्था की एक अनिवार्य विशेषता है। आमतौर पर, लोग अपनी जाति या उप-जाति में विवाह करते हैं। हालाँकि, कुछ अपवाद भी थे। भारत के कुछ क्षेत्रों में, उच्च जाति के पुरुष निम्न जाति की महिलाओं से शादी कर सकते थे। इस तरह के विवाह गठबंधन को बहिर्विवाह (हाइपरगामी) के रूप में जाना जाता है।

5.2.6 व्यवसाय के अप्रतिबंधित पसंद का अभाव

परंपरागत रूप से प्रत्येक जाति एक व्यवसाय से जुड़ी थी। अनुष्ठान की शुद्धता और उनके संबंधित व्यवसाय की शुद्धता एवं अशुद्धता के आधार पर उन्हें उच्च और निम्न स्थान दिया गया था। ऊपर के पद पर काबिज ब्राह्मणों को पवित्र ज्ञान प्राप्त करने और सिखाने का कर्तव्य निर्धारित किया गया था।

उपरोक्त, जाति व्यवस्था की आवश्यक विशेषताओं का विवरण बताता है। हालाँकि भारत के विभिन्न क्षेत्रों में इसकी संरचना में जातिगत संरचना के कई रूप हैं। एक क्षेत्रीय वास्तविकता के रूप में, कोई व्यक्ति जाति-रैंकिंग, रीति-रिवाजों और व्यवहारों, विवाह नियमों और जाति प्रभुत्व के विभिन्न पैटर्न देख सकता है।

प्रत्येक जाति की अपनी जाति परिषद या पंचायत होती थी जहाँ उसकी जाति के सदस्यों की शिकायतों को सुना जाता था। जाति पंचायत निर्धारित मानदंडों के अनुसार जाति के लोगों के व्यवहार को नियंत्रित कर रही थी और सामाजिक व्यवहार को मंजूरी दे रही थी। यदि कोई व्यक्ति जाति प्रतिबंधों का पालन नहीं करता था तो उस जाति के बुजुर्गों के नेतृत्व में, इन परिषदों के पास एक सदस्य को पूर्व-संवाद करने की शक्ति थी। इस प्रकार जाति पंचायतें , ग्राम पंचायतों से अलग रही हैं, यद्यपि अब वैधानिक निकायों के रूप में ग्राम पंचायतें , जाति की परवाह किए बिना सभी ग्रामीणों की सेवा करती हैं, हालांकि वे एक ही सिद्धांत पर काम करती हैं

बॉक्स 5.1

ड्यूमॉन्ट उन लोगों के लिए महत्वपूर्ण है जिन्होंने जाति को राजनीतिक-आर्थिक कारकों के संदर्भ में समझाने की कोशिश की, जहां जाति को वर्चस्व और शोषण की

प्रणाली के रूप में देखा गया था। उदाहरण के लिए, वह एफ.जी. बेली की आलोचना करता है। बेली, जिन्होंने दि कास्ट एंड द इकोनॉमिक फ्रंटियर '(उड़ीसा में उनके क्षेत्रीय कार्य पर आधारित) में अपनी पुस्तक में तर्क दिया है कि राजनीतिक-आर्थिक रैंक और जातीय संस्कार के श्रेणीक्रम के बीच उच्च स्तर का संयोग था। यह जाति के सामान्य नियम का प्रतिबिंब है कि जो लोग धन और राजनीतिक शक्ति प्राप्त करते हैं, वे श्रेणीक्रम की संस्कार पद्धति में वृद्धि करते हैं। कहने का मतलब यह है कि गाँव के उत्पादक संसाधनों पर अंतर नियंत्रण द्वारा जाति समूहों की रैंकिंग प्रणाली को मान्य किया गया था।

5.3 जाति के ज्ञान के लिए सैद्धांतिक दृष्टिकोण

आइए हम विद्वानों द्वारा जाति प्रणाली की समझ के लिए गुणात्मक और अंतःक्रियात्मक दृष्टिकोण की जांच करें। i) जाति के लिए जिम्मेदार गुणात्मक दृष्टिकोण जाति की विभिन्न अपरिवर्तनीय विशेषताओं के संदर्भ में जाति का विश्लेषण करता है। इस दृष्टिकोण का उपयोग करके जी एस घुर्रे, जे एच हटन जैसे समाजशास्त्री अपनी महत्वपूर्ण विशेषताओं के माध्यम से जाति व्यवस्था को परिभाषित करते हैं। उपरोक्त खंड में घूरे द्वारा वर्णित जाति प्रणाली की छह विशेषताएं शामिल हैं।

अपनी पुस्तक कास्ट इन इंडिया', हटन ने माना कि जाति व्यवस्था की केंद्रीय विशेषता है। इस तथ्य के आसपास विभिन्न प्रतिबंध और वर्जनाएँ निर्मित हैं। विभिन्न जातियों के बीच बातचीत विभिन्न जातियों पर लगाए गए इन प्रतिबंधों का उल्लंघन नहीं करती है। हटन द्वारा देखी गई जाति व्यवस्था की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता उनकी अपनी जातियों के अलावा अन्य लोगों से पका हुआ भोजन लेना है। एम एन श्रीनिवास इन विशेषताओं के आधार पर जातियों के बीच उत्पन्न संबंधों की संरचना का अध्ययन करना चाहते हैं। इस प्रकार, वह जातिगत पहचान के एक गतिशील पहलू का परिचय देता है।

अपनी पुस्तक कास्ट इन इंडिया ', हटन ने माना कि अंतर्विवाह (एण्डोगामी) जाति व्यवस्था की केंद्रीय विशेषता है। इस तथ्य के आसपास विभिन्न प्रतिबंध और वर्जनाएँ निर्मित हैं। विभिन्न जातियों के बीच बातचीत विभिन्न जातियों पर लगाए गए इन प्रतिबंधों का उल्लंघन नहीं करती है। हटन द्वारा देखी गई जाति व्यवस्था की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता उनकी अपनी जातियों के अलावा अन्य लोगों से पका हुआ भोजन लेना है। एम एन श्रीनिवास इन विशेषताओं के आधार पर जातियों के बीच उत्पन्न संबंधों की संरचना का अध्ययन करना चाहते हैं। इस प्रकार, वह जातिगत पहचान के एक गतिशील पहलू का परिचय देता है।

ii) अंतःक्रियात्मक दृष्टिकोण इस बात को ध्यान में रखता है कि एक स्थानीय अनुभवजन्य संदर्भ में जातियों को वास्तव में एक दूसरे के संबंध में कैसे श्रेणीगत किया जाता है। बेली के अनुसार जाति की गतिशीलता और पहचान अलगाव और पदानुक्रम के दो सिद्धांतों द्वारा संयुक्त हैं। उसे लगता है कि 'जातियाँ संस्कारों के नियमों में व्यक्त और धर्मनिरपेक्ष पदानुक्रम में खड़ी हैं'। धर्मनिरपेक्ष पदानुक्रम से उनका तात्पर्य था आर्थिक और राजनीतिक पदानुक्रम और संस्कार धार्मिक व्यवस्था का हिस्सा हैं। संस्कारों की प्रणाली राजनीतिक और आर्थिक प्रणाली को ओवरलैप करती है। इस संदर्भ में बेली (1957) ने उड़ीसा के गाँव बिसिपारा द्वारा अपना दृष्टिकोण समझाया है। उन्होंने दिखाया है कि कैसे बिसिपारा में जाति की स्थिति बदली है और आजादी के बाद और अधिक तरल हो गई है जब क्षत्रियों ने अपनी जमीन खो दी है। इससे उनकी अनुष्ठान रैंकिंग में भी गिरावट आई। इसे दूसरी जातियों से भोजन की स्वीकृति और गैर-स्वीकृति, जैसे कि बातचीत के पैटर्न में स्पष्ट रूप से परिवर्तन किया गया।

अनुष्ठानिक अंतःक्रिया द्वारा मैरिएट ने जाति रैंकिंग की व्यवस्था का अध्ययन किया। उन्होंने पुष्टि की कि अनुष्ठान पदानुक्रम स्वयं आर्थिक और राजनीतिक पदानुक्रम से जुड़ा हुआ है। आमतौर पर आर्थिक और राजनीतिक श्रेणियों का मेल होता है। यह कहना है कि अनुष्ठान और गैर-अनुष्ठान दोनों पदानुक्रम जाति क्रम में श्रेणियों को प्रभावित करते हैं, हालांकि अनुष्ठान पदानुक्रम एक बड़ी भूमिका निभाते हैं।

ड्यूमॉन्ट ने जाति के अध्ययन के अंतःक्रियात्मक परिप्रेक्ष्य में एक नया आयाम जोड़ा। उनके अनुसार स्थानीय संदर्भ का जाति श्रेणी और पहचान में एक भूमिका है, लेकिन यह पदानुक्रम की विचारधारा की प्रतिक्रिया है जो संपूर्ण जाति व्यवस्था पर फैली हुई है। ड्यूमॉन्ट के अनुसार जाति एक विशेष प्रकार की असमानता है और पदानुक्रम जाति व्यवस्था के आधार पर आवश्यक मूल्य है। यह वह मूल्य है जो हिंदू समाज को एकीकृत करता है। जाति के विभिन्न पहलुओं का कहना है कि ड्यूमॉन्ट का सिद्धांत शुद्ध और अशुद्ध के बीच विरोध के सिद्धांत पर आधारित हैं। ''शुद्ध'' ''अशुद्ध'' से बेहतर है और उसे अलग रखा जाता है।

बॉक्स 5.2

एक अनुकूल संस्था के रूप में जाति पर इस भागीदारी का प्रभाव स्पष्ट रूप से दो गुना हैः जाति के आंतरिक सामाजिक संगठन पर एक रूढ़िवादी के रूप में जो अपनी अखंडता को अधिक प्रभावी ढंग से जुटाने के लिए संरक्षित करेगा, और अन्य जातियों के लिए अपने बाहरी संबंधों में एक अधिक रचनात्मक रूप में वे शक्ति, प्रतिष्ठा और धन के लिए दुर्लभ संसाधनों के अपने हिस्से को अधिकतम करने का प्रयास करते हैं, और 'मूल समझौते की नागरिक राजनीतिश को विकसित करते हैं। बाजार अर्थव्यवस्था और लोकतांत्रिक राजनीति के बारे में बहुत अधिक निर्भरता लाने के लिए जाति समूहों को दूसरों के उद्देश्यों के विपरीत शक्ति प्रदान करती है। जिसका पहला प्रभाव जाति की निष्ठाओं का संरक्षण करना और दूसरा व्यापक लोगों का निर्माण करना होता है। इस प्रकार लिंच का निष्कर्ष है : 'आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ही इस प्रक्रिया में खुद को आगे लाती है और एक नए राज्य के संघर्ष में नागरिकता और जातिगत प्रस्थितियों के प्रति निष्ठावान राष्ट्र बनने के लिए संघर्ष करती है।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था के विश्लेषण में जाति की सैद्धांतिक स्थिति अत्यधिक जटिल है। यह सामाजिक स्तरीकरण की एक संरचनात्मक इकाई के साथ-साथ एक प्रणाली दोनों का गठन करता है। दोनों के बीच निहित अंतर विश्लेषण के स्तर पर निर्भर करता है । समाजशास्त्री जो जाति के सांस्कृतिक दृष्टिकोण को देखते हैं, शुरू से ही, इसे स्तरीकरण के एक स्वायत्त सिद्धांत से जोड़ते हैं, जिसके आधार हैं, संस्थागत असमानता, सामाजिक गतिशीलता के संबंध में बंद सामाजिक प्रणाली, श्रम के विभाजन का एक प्राथमिक स्तर पारस्परिकता के अनुष्ठान आधारों पर वैधता, और प्रदर्शन के बजाय गुणवत्ता (अनुष्ठान शुद्धता या नस्लीय शुद्धता) पर जोर देता है।

दूसरे शब्दों में, जाति सांस्कृतिक प्रणाली या विश्व-दृष्टिकोण के एक स्वायत्त रूप से जुड़ी हुई है। जाति के इस दृष्टिकोण का इतिहास समाजशास्त्रीय साहित्य में बहुत पहले से ही पाया जाता है (देखें डुबॉइस 1906, नेसफील्ड 1885: ओ मल्ले 1932, वेबर 1952, क्रोबेबर 1930 आदि) और यह प्रवृत्ति अभी भी जारी है (बर्कमैन 1967 देखेंय बर्थ 1960य डेविस 1951) डलतकंस 1968, आदि)। इस सम्बन्ध में जाति की महत्वपूर्ण धारणा केवल स्तरीकरण के सिद्धांत का एक प्रकार है जो न केवल भारत में, बल्कि अन्य समाजों में भी कार्यरूप में पाया जा सकता है। इस दृष्टिकोण का एक महत्वपूर्ण निहितार्थ है , जैसा कि हम डेविस के लेखन में पाते हैं, ए.आर. देसाई (1966) और बोस (1968 अन्य) और अन्य यह समझते

हैं कि एक संरचनात्मक वास्तविकता होने के नाते यानी सामाजिक संरचना जाति का हिस्सा होने के बाद भारत में समाज उच्च स्तर (औद्योगिकीकरण के बाद सिंह 1968) में विकसित होता है। जाति के संरचनात्मक दृष्टिकोण के बारे में एक सरल समझ यह है कि यह एक आदर्श प्रकार की स्तरीकरण प्रणाली बनाता है और जोकि हमेशा के लिए अस्तित्व में हो सकता है, या समाजों में स्तरीकरण के अन्य रूपों के साथ सह-अस्तित्व में है। यह दृष्टिकोण समाजशास्त्रियों द्वारा आयोजित किया जाता है जो सामाजिक स्तरीकरण के विकासवादी-ऐतिहासिक दृष्टिकोण के बजाय एक संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण अपनाते हैं। (सिंह, योगेंद्र 1997. पृष्ठ .32)

इस प्रकार जाति को एक सांस्कृतिक घटना के रूप में मानने वाले समाजशास्त्रियों और एक संरचनात्मक घटना के रूप में परिभाषित करने वालों के बीच अंतर किया जा सकता है। इन पदों में से प्रत्येक में जाति के दृष्टिकोण के आधार पर एक और उपविभाजन होता हैः चाहे वह एक विशेष घटना हो, इस मूल रूप से भारतीय हो , या उसके सार्वभौमिक गुण हों। जब हम सैद्धांतिक निर्माण के दो स्तरों के बीच अंतर करते हैं, अर्थात, सांस्कृतिक और संरचनात्मक और सार्वभौमिक और विशिष्ट तब इस प्रकार चार दृष्टिकोण तार्किक वर्गों के रूप में यह उभरते हैं।

5.3.1 जाति और वर्ग

भारतीय समाज में, जाति और वर्ग सामाजिक स्तरीकरण के दो विभिन्न रूपों में अक्सर एक दूसरे के साथ ओवरलैप करते पाए गए हैं। योगेंद्र सिंह (1997) ने उल्लेख किया है कि भारत में अक्सर वर्ग जाति द्वारा परस्पर-व्याप्त होता है। जबकि जाति को एक वंशानुगत समूह के रूप में माना जाता है, एक सामाजिक वर्ग उन लोगों की श्रेणी है जो अपने समुदाय या समाज के अन्य वर्गों के संबंध में समान सामाजिक-आर्थिक स्थिति साझा करते हैं। आंद्रे बेत्तेई (1965) ने दक्षिण भारत के श्रीपुरम में जाति और वर्ग के अपने अध्ययन के आधार पर पाया कि जाति और वर्ग के बीच एक गतिशील संबंध रहा है। पारंपरिक प्रणाली में, जाति और वर्ग के बीच अधिक से अधिक समानता थी। लेकिन वर्ग व्यवस्था धीरे-धीरे जातिगत संरचना से अलग हो रही है । जाति की संरचना में किसी की भी स्थिति अलग-अलग हो सकती है। हालांकि, जाति, वर्ग भी शक्ति संरचना के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं जो संपत्ति के जहाज में स्वामित्व के संदर्भ में परिलक्षित होता है, जैसे कि, भूमि और राजनीतिक और समाज में आर्थिक स्थिति ।

गतिविधि 1

अपने परिवार और दोस्तों के साथ चर्चा से उन विशेषताओं की एक सूची बनाइये जिन्हें आप जाति से संबंधित मानते हैं। अपने अध्ययन केंद्र में अन्य छात्रों के साथ चर्चा करें।

5.3.2 जजमानी प्रणाली

जजमानी प्रणाली को भारतीय सामाजिक मानव-शास्त्र में विलियम विजर (1937) द्वारा उनके अग्रणी कार्य, ''द हिंदू जजमनी सिस्टम'' के माध्यम से पेश किया गया था। उत्तर प्रदेश के एक गांव के अपने अध्ययन में, उन्होंने पता लगाया कि विभिन्न जातियों ने वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन और विनिमय में एक दूसरे के साथ कैसे अंतः क्रिया करती हैं । उन्होंने यह पाया गया कि, कुछ भिन्नताओं के साथ, यह प्रणाली पूरे भारत में मौजूद थी।

वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन और वितरण की कृषि प्रणाली पर आधारित , जजमानी प्रणाली जमींदार उच्च जाति समूहों और व्यावसायिक जातियों के बीच की कड़ी है। यह

कहा जा सकता है कि जजमानी प्रणाली वितरण की एक प्रणाली है जिसके तहत उच्च जाति की भूमि के मालिक परिवारों को विभिन्न निम्न जातियों जैसे कि बढ़ई, नाई, स्वीपर, आदि द्वारा सेवाएं प्रदान की जाती हैं।

यह गांव में विभिन्न जाति समूहों के बीच आर्थिक, सामाजिक और अनुष्ठान संबंधों की एक प्रणाली है। इस प्रणाली के तहत संरक्षक और सेवा जातियां हैं। चूँकि जाति का पेशा से पारंपरिक संबंध है, इसलिए कई सेवाएँ हासिल करने के लिए जातियाँ एक-दूसरे पर निर्भर हैं।

सेवा करने वाली जातियों को कमीन कहा जाता है जबकि सेवा की जातियों को जजमान कहा जाता है। प्रदान की गई सेवाओं के लिए, सेवक जातियों का भुगतान नकद या प्रकार (अनाज, चारा, कपड़े, दूध, मक्खन, आदि जैसे पशु उत्पादों) में किया जाता है। राजपूत, भूमिहार और जाट उत्तर में संरक्षक जातियां और दक्षिण में काममा, रेड्डी और लिंगायत हैं। सेवा जातियों में नाई, बढ़ई, लोहार, धोबी आदमी, चमड़ा-मजदूर आदि शामिल हैं, जजमानी के अधीन संबंध स्थायी और वंशानुगत था। ऑस्कर लेविस का उल्लेख है कि एक गांव के भीतर प्रत्येक जाति समूह पारंपरिक रूप से अन्य जातियों के परिवारों को कुछ मानकीकृत सेवाएं देने के लिए बाध्य है। जबकि उच्च जाति के परिवारों को निम्न जातियों से सेवाएँ प्राप्त होती हैं और बदले में निम्न जातियों के सदस्यों को अनाज प्राप्त होता है।

पिछले दशकों में जजमानी प्रणाली में कई महत्वपूर्ण बदलाव हुए हैं। गाँव में, हर जाति इस प्रणाली में भाग नहीं लेती है। जजमानी संबंध के अलावा, माल और सेवाओं के प्रदाताओं और उनके खरीदारों के बीच हमेशा संविदात्मक, मजदूरी श्रम प्रकार का संबंध रहा है। नकदी अर्थव्यवस्था का परिचय परिवर्तन भी लाया है, क्योंकि जजमानी प्रणाली में भुगतान नकदी के बजाय कृपा पर आधरित थे। कस्बों और शहरों में नए अवसर आए हैं, और कई व्यावसायिक जातियां इन अवसरों में भाग लेने के लिए शहरों में चली गई हैं। जीवन शैली, आधुनिक शिक्षा, बेहतर परिवहन और संचार के प्रभाव के कारण जजमानी प्रणाली में गिरावट आई है। विनिमय की वस्तु विनिमय प्रणाली अब लगभग विलुप्त हो चुकी है। अब भुगतान नकद के रूप में किया जाता है। जाति व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन भी जजमानी प्रणाली के पारंपरिक संस्थान के कामकाज के रास्ते में बाधा उत्पन्न किया है।

बोध प्रश्न 1

नोट : क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दी गई जगह का उपयोग करें।

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तर के साथ अपने उत्तरों की जांच करें।

1) जाति को परिभाषित करें और भारत में जाति व्यवस्था की कम से कम तीन विशेषताओं का उल्लेख करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) जाति की समझ के प्रति गुणात्मक दृष्टिकोण का क्या अर्थ है? जवाब देने के लिए पांच लाइनों का उपयोग करें।

.....

.....

.....

.....

.....

5.4 जाति व्यवस्था के अंतर्गत परिवर्तन एवं निरंतरता

परिभाषा के अनुसार, जाति व्यवस्था को स्तरीकरण की कठोर और बंद प्रणाली के रूप में देखा जाता है। इसका अर्थ यह है कि एक जाति की प्रस्थिति से दूसरी जाति की ओर में कोई आंदोलन या गतिशीलता नहीं है। सामाजिक गतिशीलता वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति या समूह आगे या नीचे की ओर बढ़ते हैं अथवा एक सामाजिक स्थिति से दूसरे सामाजिक पदानुक्रम में परिवर्तित होते हैं । वास्तव में, सामाजिक गतिशीलता जाति व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता रही है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि जाति व्यवस्था एक गतिशील वास्तविकता है, जिसमें इसकी संरचना और कार्य के संदर्भ में लचीलापन है।

संस्कृतिकरण की अवधारणा जो मूल रूप से सामाजिक गतिशीलता की एक प्रक्रिया है, जिसे एम एन श्रीनिवास ने जाति व्यवस्था की गतिशील प्रकृति का वर्णन करने के लिए विकसित किया था। अपने पथप्रवर्तक अध्ययन , कूर्ग (1952) के बीच धर्म और समाज,में एम एन श्रीनिवास ने स्थानीय निचली जातियों द्वारा ब्राह्मणों के सांस्कृतिक अनुकरण के संदर्भ में जातिगत गतिशीलता को समझाया। उन्होंने संस्कृतिकरण को 'एक ऐसी प्रक्रिया' के रूप में परिभाषित किया, जिसके द्वारा 'निम्न' हिंदू जाति, या आदिवासी या अन्य समूह अपने रीति-रिवाजों, कर्मकांड, विचारधारा और जीवन के तरीके को उच्च, अक्सर 'द्विज' जाति के रूप में बदलते हैं। आम तौर पर इस तरह के बदलावों को जाति पदानुक्रम में एक उच्च पद के लिए एक दावे के बाद किया जाता है, जो परंपरागत रूप से स्थानीय समुदाय द्वारा दावेदार जाति को स्वीकार किया जाता है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के सेनापुर गाँव में नोनिया के विलियम रोव्स के अध्ययन से आर्थिक समृद्धि प्राप्त करने के बाद संस्कृतिकरण के माध्यम से ऊर्ध्वगामी गतिशीलता प्राप्त करने में एक मध्यम स्तर की जाति की सफलता का पता चलता है। संस्कृतिकरण का एक स्पष्ट उदाहरण 'द्विज' जाति का अनुकरण है, जैसे कि, तथाकथित 'निचली जातियों' द्वारा शाकाहार का प्रयोग । जाति व्यवस्था के भीतर गतिशीलता के लिए यह प्रशस्त तरीका है। हालांकि, जातिगत पदानुक्रम में ऊपर की ओर चढ़ने के इच्छुक निचली जातियों को उच्च जातियों से विरोध का सामना करना पड़ता है।

संस्कृतिकरण के साथ-साथ पश्चिमीकरण की प्रक्रिया ने भी सामाजिक गतिशीलता को संभव बनाया है। पश्चिमीकरण भारत में सभी सांस्कृतिक परिवर्तनों और संस्थागत नवाचारों को संदर्भित करता है क्योंकि यह पश्चिमी देशों विशेषकर ब्रिटिश के साथ राजनीतिक और सांस्कृतिक अनुबंध में आया था। इसमें वैज्ञानिक, तकनीकी और शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना, राष्ट्रवाद का उदय, देश में नई राजनीतिक संस्कृति और नेतृत्व शामिल हैं। इस प्रक्रिया में कई उच्च जातियों ने पारंपरिक रीति-रिवाजों को छोड़ दिया और पश्चिमी लोगों की जीवन शैली को अपनाया।

औद्योगीकरण और नगरीकरण या शहरीकरण की प्रक्रिया (गाँवों से शहरों की ओर लोगों का पलायन) ने जाति संरचना को काफी हद तक प्रभावित किया। औद्योगिक विकास ने लोगों को आजीविका के नए स्रोत प्रदान किए और व्यावसायिक गतिशीलता को संभव बनाया। साथ ही नई परिवहन सुविधाओं के साथ, लगातार संचार का प्रयोग भी बढ़ा। इस कारण सभी जातियों के लोगों ने एक साथ यात्रा की और जातियों के बीच अनुष्ठान शुद्धता और प्रदूषण की प्रचलित विचारधारा का पालन करने का कोई तरीका नहीं बचा । भोजन के बंटवारे के खिलाफ वर्जनाएं कमजोर पड़ने लगीं जब विभिन्न जातियों के औद्योगिक कार्यकर्ता एक साथ रहने लगे और एक साथ काम करने लगे ।

शहरों के शहरीकरण और विकास ने भी जाति व्यवस्था के कामकाज को बदल दिया। इस सन्दर्भ में किंग्सले डेविस (1951) ने माना कि शहर की गुमनामी, भीड़, गतिशीलता, धर्मनिरपेक्षता और परिवर्तनशीलता जाति के संचालन को लगभग असंभव बना देती है। घुर्ये (1961) का मानना है कि जाति व्यवस्था की कठोरता में परिवर्तन शहर के जीवन के विकास के कारण थे। एम एन श्रीनिवास (1962) का मानना है कि कस्बों में ब्राह्मणों के प्रवास के कारण गैर-ब्राह्मणों ने उनके प्रति वही सम्मान दिखाने से इनकार कर दिया, जो वे पहले दिखाते थे, और इसने ही अंतरजातीय खाने और पीने की वर्जनाओं को भी कमजोर किया।, ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को चुनौती दी गई है, जिसे कभी धार्मिक हठधर्मिता माना जाता था जो अतीत में और जन्म पर आधारित था लेकिन अब ऐसा नहीं है।

औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के अलावा, देश में स्वतंत्रता के बाद उभरे अन्य कारकों ने जाति व्यवस्था को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया। देश में स्वतंत्रता के बाद विभिन्न राजनीतिक और आर्थिक नीतियों और सुधारों की शुरुआत की गई, जिसके कारण स्वतंत्रता के बाद कई बदलाव हुए। सामाजिक-धार्मिक सुधार और आंदोलनों, कुछ राज्यों के विलय से आधुनिक शिक्षा का प्रसार, आधुनिक पेशे का विकास, स्थानिक गतिशीलता और बाजार अर्थव्यवस्था आदि के प्रसार ने आधुनिकीकरण और विकास की प्रक्रिया को तेज किया। नतीजतन, परिवर्तन और जाति व्यवस्था में सामाजिक गतिशीलता की प्रक्रिया ने गति प्राप्त की है।

औद्योगिकरण के विकास से नए व्यावसायिक अवसर उभरे जो अनुष्ठानिक रूप से तटस्थ थे। इन नए व्यवसायों में प्रवेश आधुनिक शिक्षा के माध्यम से प्रदान किए गए तकनीकी कौशल पर आधारित थे। जब अलग-अलग जातियों के लोग आधुनिक व्यावसायिक समायोजन में एक साथ निकट संपर्क में आए , तो इसने जाति के अनुष्ठान, आनुवंशिकता और पदानुक्रमित संरचना और पहलुओं को एक गंभीर झटका दिया।

जाति व्यवस्था के तहत, अंतर्विवाह (एंडोगैमी) जीवन - साथी के चयन का आधार था। समूह के बाहर शादी करने के लिए गैर-बदलते सामाजिक कानूनों द्वारा एक जाति या उप-जाति के सदस्यों को मना किया जाता है। लेकिन वर्तमान में स्पेशल मैरिज एक्ट, 1954 और हिंदू मैरिज एक्ट, 1955 ने एंडोगैमी के प्रतिबंधों को हटा दिया है और अंतर-जातीय विवाह को कानूनी रूप से वैध घोषित कर दिया है। बाद में, पश्चिमी दर्शन के प्रभाव, सह-शिक्षा, एक ही कारखाने या कार्यालय में विभिन्न जातियों के पुरुषों और महिलाओं के एक साथ काम करने के कई कारकों ने अंतर-जातीय विवाह और प्रेम-विवाह, देर से विवाह और लिव-इन-रिलेशनशिप के मामलों में वृद्धि में योगदान दिया है।

राम कृष्ण मुखर्जी (1958) ने कहा कि आर्थिक पहलू (व्यावसायिक विशेषज्ञता में बदलाव) और सामाजिक पहलू (उच्च जाति के रीति-रिवाजों को अपनाना, प्रदूषण फैलाने वाले व्यवसायों को छोड़ना आदि) दोनों ने जाति व्यवस्था को बहुत हद तक बदल दिया है।

उन्होंने कहा कि शहरी क्षेत्रों में परिवर्तन अधिक विशिष्ट है जहां सामाजिक संपर्क पर नियम हैं, और जातियों के साथ सहभोजन बढावा दिया है और निचली जातियों के नागरिक और धार्मिक निर्योग्यताएँ को हटा दिया गया है। बहुत से विद्वानों का दृष्टिकोण के है कि जाति व्यवस्था के भीतर धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहे हैं लेकिन वे समग्र रूप से व्यवस्था के लिए विघटनकारी नहीं हैं। इस सन्दर्भ में घुर्ये (1961) का मत था कि जाति ने अपनी कुछ विशेषताओं को छोड़ दिया है। उन्होंने कहा कि, 'जाति अब किसी व्यक्ति के व्यवसाय का कठोरता से निर्धारण नहीं करती है लेकिन जाति के भीतर विवाह के बारे में अपने मानदंडों को निर्धारित करना जारी रखती है।' शादी, जन्म और मृत्यु जैसे महत्वपूर्ण समय पर मदद के लिए किसी एक जाति पर बहुत अधिक निर्भर रहना पड़ता है। "उनका मानना था कि सामाजिक जीवन में जाति व्यवस्था की ताकत आज भी उतनी ही मजबूत है जितनी पहले थी। हालांकि आंद्रे बेतेइ ने जाति व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों के संदर्भ में जातियों, जीवन शैली, समानता और सहभोजन के बीच अपनी संरचनात्मक दूरी के संदर्भ में बताया है। विद्वानों ने यह भी कहा है कि जाति ने शुद्धता और प्रदूषण के अपने पारंपरिक तत्वों को खो दिया है और वह एक पहचान समूह के रूप में विकसित हुई है। (शर्मा, के)

5.4.1 जाति और राजनीति

एक जाति के दूसरे पर प्रभुत्व की घटना जाति व्यवस्था के बने रहने का एक महत्वपूर्ण कारक थी। परंपरागत रूप से, आर्थिक और राजनीतिक प्रभुत्व संस्कार के प्रभुत्व के साथ मेल खाता था। श्रीनिवास (1966) के अनुसार किसी जाति को तब प्रमुख कहा जाता है जब वह गाँव या स्थानीय क्षेत्र में संख्यात्मक रूप से सबसे मजबूत होती है और यह आर्थिक और राजनीतिक रूप से बड़ा प्रभाव डालती है। इस तरह के कारक एक विशेष जाति समूह को राजनीतिक प्रभुत्व की स्थिति में रखने के लिए गठबंधन करते हैं।

समाजशास्त्रियों ने जाति के संदर्भ में राजनीतिक विश्लेषण किया है और समय के साथ से जाति के राजनीतिक विकास का पता लगाया है। उन्होंने राजनीतिक सत्ता हासिल करने के लिए जाति की भूमिका और राजनीति से इसके जुड़ाव का विश्लेषण किया है। संसदीय लोकतंत्र की प्रणाली, वयस्क मताधिकार, लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण और पंचायती राज की प्रणाली ने राजनीति को जमीनी स्तर पर ले जाता है जहां जाति चुनावी राजनीति में एक प्रमुख चर बन जाती है। राजनीति में संगठित पार्टी प्रणाली की माँगों ने जातियों के गठजोड़ को जन्म दिया है और जाति आधारित राजनीति ने जाति के महत्व को बढ़ावा दिया है । यह जाति लामबंदी और साथ ही राजनीतिक लाभ, भौतिक कल्याण, सामाजिक स्थिति और जातिगत गठजोड़ के लिए एकीकरण का कारक रही है। (देखें कोठारी, आर. (सं.) 1970ः भारतीय राजनीति में जाति, ओरिएंट लैंगमैन, नई दिल्ली)

आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था संविधान द्वारा सार्वभौमिक है और यह जाति के कारक को विशेषाधिकार में नहीं लेती है लेकिन व्यवहार में, जमीनी स्तर पर, जातिगत विचार लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रक्रिया में एक प्रमुख स्थान पर काबिज हो गए हैं। उनकी भूमिका के संदर्भ में जाति आधारित राजनीतिक चेतना, जाति सभा या जाति संघों और भारतीय राजनीति और राजनीतिक गोलबंदी में स्पष्ट है। रजनी कोठारी ने जाति और राजनीति के बीच संबंधों की जांच की है। उन्होंने पाया कि उन्होंने शिक्षा के कारकों, सरकारी संरक्षण और मताधिकार का विस्तार करने जाति व्यवस्था को प्रभावित किया, जिससे देश में लोकतांत्रिक राजनीति प्रभावित हुई। आर्थिक अवसर, प्रशासनिक संरक्षण बढ़ती चेतना, सामाजिक दृष्टिकोण बदल रहा है। नए अवसरों की मान्यता और बढ़ती चेतना और आकांक्षाओं ने जाति को राजनीति और राजनीतिक गोलबंदी में खींच लिया है।

विभिन्न दलों और आंदोलनों ने जाति आधारित स्थिति समूहों को अपने राजनीतिक हित के लिए संसाधनों के रूप में जुटाया। बहुत बार उम्मीदवारों को उनकी जातिगत पहचान के आधार पर राजनीतिक दलों द्वारा मैदान में उतारा जाता है। जाति संगठित पार्टी की राजनीति के लिए जुटाव और समर्थन की एक पहले से तैयार प्रणाली प्रदान करती है। विभिन्न जाति महासंघ हैं जो अपने सामान्य पाठ्यक्रम के लिए लड़ने के लिए एक संगठित राजनीतिक मंच प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, गुजरात की क्षत्रिय सभा एक सक्रिय जाति महासंघ का चित्रण है। इसमें जाति या जाति के समूह शामिल हैं, जो जाति आधारित राजनीतिक समुदाय की तरह काम करते हैं। इस प्रकार, जाति राजनीतिक महत्व का एक कारक है और यह राजनीति के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है।

5.4.2 जातिगत भेदभाव को रोकने के उपाय

स्वतंत्रता के बाद शिक्षा के प्रसार और सामाजिक सुधार आंदोलनों ने सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़ी जातियों और वर्गों की मुक्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी के प्रभाव के कारण विभिन्न अन्य कानूनी संवैधानिक उपायों में जाति और अन्य कारकों के आधार पर भेदभाव निषिद्ध है। हमारा संविधान समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित है। यह किसी भी भेदभाव की अनुमति नहीं देता है। संवैधानिक जनादेश को पूरा करने के लिए, संसद में कई अधिनियमों को पारित किया गया है ताकि अंतिम अपराधियों के खिलाफ शोषणकारी और भेदभावपूर्ण प्रथाओं को समाप्त किया जा सके। भारत सरकार ने अस्पृष्यता को दूर करने के लिए कानून बनाए हैं। इसने समाज के कमजोर वर्गों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिए कई सुधार भी किए हैं। उनमें से कुछ हैं:

i) मौलिक मानवाधिकारों की संवैधानिक रूप से गारंटी

ii) 1950 में अस्पृश्यता का उन्मूलनष्य

iii) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 और

iv) शैक्षणिक संस्थानों, रोजगार और अन्य अवसरों में आरक्षण का प्रावधान,

v) 1976 में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के कल्याण के लिए समाज कल्याण और राष्ट्रीय आयोगों की स्थापना और अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 को नागरिक सुरक्षा अधिनियम का नाम दिया गया।

एससी और एसटी अधिनियम, 1989 उनके खिलाफ गतिविधियों की जाँच, बचाव और रोकथाम के लिए महत्वपूर्ण उपायों में से एक है। मैनुअल स्कैवेंजर्स और उनके पुनर्वास के रूप में रोजगार के निशेध के लिए एक अधिनियम, 2013 भी है। इस अधिनियम का उद्देश्य मैला ढोने के रोजगार को रोकना, बिना सुरक्षात्मक उपकरणों के सीवरों और सेप्टिक टैंकों की मनुष्यों द्वारा सफाई, और अस्वास्थ्यकारी शौचालयों के निर्माण पर रोक लगाना है। अधिनियम मैला ढोने वालों का पुनर्वास करना चाहता है और उन्हें वैकल्पिक रोजगार प्रदान करना चाहता है।

गतिविधि 2

अपने दोस्तों के साथ कानूनी उपायों और विभिन्न कदमों के बारे में चर्चा करें, जो हमारे संविधान भारतीय समाज में जातिगत भेदभाव को रोकने के लिए प्रदान करते हैं। इस चर्चा पर एक पृष्ठ की एक रिपोर्ट लिखें और अपने अध्ययन केंद्र में अपने सहकर्मी समूह के साथ इस पर चर्चा करें।

भारत का संविधान एक समानतावादी समाज बनाने की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाने के लिए विभिन्न अनुच्छेदों के तहत सुरक्षात्मक भेदभाव के लिए उपाय प्रदान करता है। संविधान अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को अधिमान्य उपचार देता है। इस प्रकार आरक्षण उन्हें सामाजिक और आर्थिक रूप से उत्थान करने के लिए सत्ता, राजनीति, सेवाओं, रोजगार में हिस्सेदारी देने की रणनीति रही है। 1950 में, संविधान ने अनुसूचित जातियों के लिए 12.5% और अनुसूचित जनजातियों के लिए 5% आरक्षण दिया, लेकिन बाद में 1970 में, इसे SC के लिए 15% और ST के लिए 7.5% कर दिया गया। आरक्षण नौकरियों, शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश और केंद्रीय और राज्य विधानसभाओं में प्रदान किया गया था। तदनुसार, सभी राज्य सरकारों ने राज्य में एससी और एसटी को सेवाओं और अन्य क्षेत्रों के लिए आरक्षण प्रदान करने के लिए कानून बनाए। भारत के संविधान में अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) के लिए विशेष प्रावधान है, जिसमें उनके लिए ओबीसी शब्द का उपयोग किया जाता है। संविधान का अनुच्छेद 15 (4) उन्हें, नागरिकों के सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों 'के रूप में संदर्भित करता है। अनुच्छेद 340, उन्हें 'सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों' के रूप में संदर्भित करता है। अनुच्छेद 16 (4) उन्हें केवल पिछड़े वर्ग के नागरिकों 'के रूप में संदर्भित करता है। अनुच्छेद 46 उन्हें शैक्षिक और लोगों के आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के रूप में संदर्भित करता है। अन्य पिछड़ा वर्ग या ओबीसी की उन्नति के लिए हमारे संविधान में विभिन्न अनुच्छेदों में कई प्रावधान हैं।

हालाँकि, आरक्षण का मुद्दा अधिक जटिल है, विशेष रूप से अखिल भारतीय स्तर पर। जमीनी हकीकत ने दिखा दिया है कि गरीबों और वंचितों की हालत सुधारने के लिए कई उपाय कारगर नहीं हैं। इसलिए, आरक्षण के मानदंडों के मुद्दे को बार -बार से उठाया गया है। समय-समय पर इसके मूल्यांकन और नीति निर्माण की आवश्यकता है।

अंतिम विश्लेषण में हम मानते हैं कि समाज में होने वाले परिवर्तनों के कारण जाति पारंपरिक कार्यों, मानदंडों और संरचना को खो रही है लेकिन जाति अभी भी मौजूद है। यह बदले हुए वातावरण, स्थिति और मानसिकता के अनुरूप नया 'अवतार प्राप्त कर रहा है।

जाति खुद को संशोधित कर रही है लेकिन अभी भी कायम है, खासकर ग्रामीण इलाकों में। शहरी क्षेत्रों में, जाति हित और वर्ग समूहों के जटिल नेटवर्क के रूप में बनी हुई है। हालाँकि भारतीय समाज की एक गतिशील वास्तविकता के रूप में जाति में कई परिवर्तन हुए हैं और अभी भी निरंतरता के तत्व मौजूद हैं। एक पहचान समूह के रूप में जाति व्यवस्था भारतीय समाज की एक अनूठी सामाजिक संस्था के रूप में मौजूद है।

बोध प्रश्न 2

नोट : क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दी गई जगह का उपयोग करें।

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तर के साथ अपने उत्तरों की जांच करें।

1) समकालीन भारत में जाति व्यवस्था कैसे बदल गई है, इस पर संक्षिप्त चर्चा करें। प्रश्न का उत्तर देने के लिए लगभग 10 पंक्तियों का उपयोग करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारतीय संविधान निम्न जातियों को भेदभाव से बचाने में कैसे मदद करता है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए लगभग 10 पंक्तियों का उपयोग करें।

.....

.....

.....

.....

.....

5.5 सारांश

हमने जाति और उसके इतिहास की विशेषताओं के बारे में संक्षेप में बताया है। यह पदानुक्रम के साथ जुड़ा हुआ है और जजमानी प्रणाली के रूप में ग्रामीण क्षेत्रों में मौजूद है। पदानुक्रम के अलावा, जाति प्रणाली को श्रम के व्यवसाय वाले विभाजन की विशेषता है, जो कि एक साथ 'कच्चे' या 'पक्के' खाने और सामाजिक संपर्क, नागरिक और धार्मिक विकलांग, विभिन्न वर्गों के विशेषाधिकार, विवाह और प्रतिबंधों द्वारा प्रतिबंधित है। इस सन्दर्भ में व्यवसायों की पसंद, जाति व्यवस्था के भीतर परिवर्तन और निरंतरता को समझाया गया है। जाति और राजनीति के संबंध को पंचायती राज की संस्था में जाति की भूमिका के विशेष संदर्भ के साथ भी समझाया गया है। पिछले भाग में, हमारे संविधान के निर्माण के दौरान सरकार द्वारा उठाए गए जातिगत भेदभाव को रोकने के उपायों के बारे में बताया गया है। निष्कर्ष रूप में, व्यवस्था के भीतर जाति की व्यवस्था, परिवर्तन और निरंतरता की वर्तमान स्थिति को समझाया गया है।

5.6 संदर्भ

श्रीनिवास एम.एन.1962, आधुनिक भारत में जाति और अन्य निबंध, मीडिया प्रकाशक, बॉम्बे।

श्रीनिवास, एम.एन. 1952. दक्षिण भारत के कूर्गों के बीच धर्म और समाज, मीडिया प्रचारक और प्रकाशक प्रा. लि., बंबई।

घुर्ये, जी.एस. जाति, वर्ग और व्यवसाय - लोकप्रिय प्रकाशन, 1961 बॉम्बे।

राम आहूजा, इंडियन सोशल सिस्टम, रावत पब्लिकेशन, 1966 नई दिल्ली। (प्रामाणिक स्रोत नहीं)

इग्नू बीडीपी सामग्री पर (2017 (पुनर्मुद्रण) ईएसओ-12, ब्लॉक 5 जाति और वर्ग और समाज और स्तरीकरणय भारतीय समाज ईएसओ-14 में ब्लॉक 5 स्पष्टीकरण जाति।

5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) जाति, वर्ण (या रंग) के अखिल भारतीय दर्शन के भीतर, जाति और उपजाति के अपने क्षेत्रीय जाति पदानुक्रम के आधार पर हिंदू समाज को अलग-अलग खंडों में विभाजित करती है। यह पदानुक्रम जन्म आधारित है यानी किसी को उस वर्ण या जाति में और यह अनुष्ठान शुद्धता और प्रदूषण पर आधारित है।

2) जाति व्यवस्था को समझने के लिए गुणात्मक दृष्टिकोण जाति की समझ पर आधारित है जो विभिन्न विशेषताओं की दृष्टि से हैय जैसे पदानुक्रम, शुद्धता और प्रदूषण व्यवसाय, आदि। इस दृष्टिकोण का उपयोग जी.एस घुर्ये, जैसे समाजशास्त्रियों द्वारा किया गया है

बोध प्रश्न 2

1. जाति व्यवस्था को वर्ग के विपरीत स्तरीकरण की एक बंद प्रणाली माना जाता है। हालांकि, समाजशास्त्रियों ने अपने अध्ययन में पाया है कि निचले समूहों से लेकर उच्च स्तर तक के जाति समूहों के आंदोलन के संदर्भ में सामाजिक गतिशीलता हमेशा से थी। परंतु, स्वतंत्रता के बाद, हमारे संविधान में निहित लोकतंत्र की एक सार्वभौमिक राजनीतिक प्रणाली द्वारा लाए गए परिवर्तनों के साथ-साथ संस्कृतिकरण, पश्चिमीकरण और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने समाज में तेजी से बदलाव लाने में मदद की। इसके कारण जाति व्यवस्था में बदलाव आया लेकिन अभी तक कुछ कठोर तत्वों, जैसे, पहचान और राजनीति से इसके जुड़ाव अभी भी भारत में समाज को आकार दे रहे हैं।

2) भारतीय संविधान भारत के सभी नागरिकों के लिए समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व लाने के अपने जनादेश के माध्यम से अपने नागरिकों को कुछ संवैधानिक उपायों जैसेः

   i) अस्पृशयता का उन्मूलन

   ii) मौलिक मानवाधिकारों की संवैधानिक रूप से गारंटी।

   iii) एससी, एसटी और ओबीसी के लिए सीटों का आरक्षण उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए भविष्य कहे जाने वाले भेदभाव के उपायों के रूप में और सामाजिक न्याय और समाज में समानता लाने के लिएय और इसी तरह अन्य उपाय।